प्रो. आशा रानी,

पी.जी.डी.ए.वी.कॉलेज (सांध्य) ,

दिल्ली विश्वविद्यालय

बाबा बुल्लेशाह की जीवन दृष्टि

भारतीय साहित्य में बहती ज्ञान की धारा में पंजाबी बोली में बहती अमृतधारा में बाबा शेख़ फ़रीद, वारिस शाह, शाह हुसैन,सुल्तान बाहू और बुल्लेशाह पंजाबी सूफी काव्यधारा के मुख्य स्तम्भ रहे हैं और पंजाबी साहित्य के आसमान में चमकते ऐसे सितारे हैं जिन्होंने पंजाबी को बहुत समृद्ध किया है। बाबा बुल्लेशाह पंजाबी के सुविख्यात सूफ़ी संत और बड़े कवि हुए हैं। अन्य संत कवि-फकीरों की तरह ही महान संत कवि बुल्लेशाह का जीवन भी जनश्रुतियों से घिरा हुआ है। इनका जीवन काल सन् **1680** से लेकर **1758** तक माना जाता है। पंजाब के इतिहास में बुल्लेशाह गुरु गोबिंद सिंह के समकालीन थे। यह भी माना जाता है कि उन्हें गुरु के दर्शन भी हुए थे। वह बाबा बंदा बहादुर और उनके बाद चले सिख आंदोलन के निकट संपर्क में थे। सूफ़ी कवि बाबा बुल्लेशाह का जन्म अविभाजित भारत के लाहौर जिले के पांडोके नामक गांव में हुआ। एक रवायत यह भी है कि इनका जन्म रियासत बहावलपुर के मशहूर गाँव गिलानियां में हुआ और जन्म के छः माह बाद ही आपके माता-पिता उच्च गिलानियां से पांडोके जिला लाहौर आ गए। आपका वास्तविक नाम “अब्दुल्ला शाह” था और आप इस्लाम के अंतिम नबी मुहम्मद की पुत्री फ़ातिमा के वंश में से थे।बुल्ले शाह के दादा सय्यद अब्दुर रज़्ज़ाक, सैय्यद जलाल-उद-दीन बुखारी के वंशज थे। बाद में उन्हें सैय्यद बुल्लेशाह, साईं बुल्लेशाह, बाबा बुल्लेशाह और बुल्ला नाम से जाना जाने लगा। अपने असल नाम की ओर बुल्ले ने अपने कलाम में भी कई संकेत दिए हैं। उन्होंने अपने बारे में लिखा है—-

“अब अल्लाह कहकर तुम करो दुआइं,

पिया ही सब हो गया अब्दुल्ला नाहीं ।”**1**

पाकिस्तान के शहर कसूर में बाबा बुल्लेशाह की मज़ार बनी हुई है जहाँ हर वर्ष मेला लगता है।लगभग साढ़े तीन सौ साल पहले हुए इस संत की काफियां वैश्विक स्तर पर पूरी शिद्दत के साथ गाईं और गुनगुनायी जाती हैं। वे हिन्दुस्तानी सूफ़ी कवि थे। उनकी रचनाएं पंजाबी में हैं लेकिन सभी धर्मों में उनकी समान स्वीकार्यता है। बुल्लेशाह की रचनाएं अन्य भारतीय संत भक्तों की तरह श्रुत और स्मृत परंपरा से हम तक आती हैं। यह लोक में पली-बढ़ी हैं। इसलिए इनमें पाठ का वैविध्य बहुत है। बुल्लेशाह की रचनाओं में **150** काफ़ियां, **49** दोहे, **40** गढ़ें, तीन सिहरफियां, एक बारहमाह और एक अठवारा मिलता है। बाबा बुल्लेशाह बचपन से ही चंचल,हँसमुख और उत्साही प्रवृति के थे। वे बिना किसी हिचकिचाहट और बिना किसी की परवाह किये कुछ भी कह देते थे। गाँव की महिलाएं उन्हें मुंहफट बच्चा कहती थीं। वारिस शाह की भांति बुल्लेशाह को भी घर परिवार का सुख नसीब नहीं हुआ था। अपने परिवार में से उनकी बहन के अलावा कोई उन्हें समझ नहीं पाया क्यूंकि वे ख़ुद भी बुल्ले की तरह पक्की सूफ़ी थीं। वे सारी उम्र कुंवारी रहीं।आम बच्चों की तरह बुल्लेशाह ने भी सपनों का महल बनाया था। वे दूर तक फैले दरिया के ऊपर तैरते पत्तों में अपनी ज़िंदगी के मुहाने खोजने की कोशिश करते थे , लेकिन समय बीतने के साथ बुल्लेशाह की सोच और लगन उनको किस तरफ़ ले जाएगी ,ये शायद उनको भी नहीं पता था। बुल्लेशाह ने अपनी

आरंभिक शिक्षा अपने पिता शेख़ मुहम्मद दरवेश से ही प्राप्त की थी ।उसके बाद वे कसूर शहर चले गए।आत्मिक ज्ञान उन्होंने मौलवी गुलाम मुरतसा के चरणों में बैठकर सीखा जो फ़ारसी अरबी के बहुत बड़े ज्ञाता थे।जवानी में पैर रखते ही उनके अंदर रूहानी इल्म की भूख पैदा हो गयी और वे रब्बी प्रेम में लीन रहने लगे। मौला बख्श के अनुसार कसूर से चलते-चलते वे एक बार बटाला (गुरदासपुर) पहुँच गए , जहाँ उनके मुख से मंसूर की तरह 'मैं अल्लाह हाँ' 'अललहक' शब्द निकला। लोग इनको पागल समझ फ़ाज़िल-उद-दीन के दरबार में ले गए।उन्होंने कहा कि ये सच कहता है कि ये अभी 'अल्ला' यानि कच्चा है,इसको कहें कि 'शाह इनायत' के पास चला जाये।

बुल्लेशाह बचपन से ही ये सोचते रहे कि बुल्ल्या तू कौन है , इस जहान से क्या लेने आया है?तेरा यहाँ कौन है? रब कहीं है भी या नहीं ? उसको कैसे ढूँढूँ , कोई ऐसा है जो उसकी राह बता सके? कुदरत के रहस्यों के बारे उसके मन में बहुत सवाल उलझे पड़े थे। ख़ुदा को देखने की तड़प को कोई मुर्शिद ही शांत कर सकता था। बुल्लेशाह के पीर , शाह इनायत यद्यपि एक कादरी संत थे किन्तु उन्हें रहस्यात्मक शक्तियों का ज्ञान था। इसी खोज में वे शाह इनायत के पास गए और उनसे उस परमात्मा का पता पूछने लगे। शाह इनायत मुस्लिम समाज में एक निम्नजाति में आते थे और वे घास खोद रहे थे। उन्होंने बुल्ले को बड़ी सहजता से अपने कर्म का उद्धरण देते हुए कहा **"**बुल्लेया रब दा की पौणा, एधरों पुटणा ते ओधरों लाउणा।**"2** अर्थात ईश्वरानुभूति का यही रहस्य है, उस परमात्मा को पाने का रास्ता घास को इधर से उखाडकर दूसरी तरफ लगा देने जैसा है। यानि अपने मन को दुनियावी कामों से हटाकर बस उसकी ओर लगाने से ही मिल जायेगा और बुल्लेशाह ने उसी समय से उन्हें अपना मुर्शिद मान लिया। यह इश्क का मार्ग लौकिक हो या अलौकिक सदा ही विषमताओं से भरा रहा है, जिसमें अपनी हस्ती को मिटाकर ही सबने मस्ती पायी है वो मस्ती जिसमें डूबकर ही वो पार उतरा है और जिसे पाकर नाचते हुए वो तमाम सीमाओं, बंधनों और संकीर्णताओं को तोड़कर मस्ताना बन पाया और ऐसा मस्ताना बनने के लिए काम ,क्रोध ,लोभ ,मोह, अहंकार, मान-सम्मान सबको त्यागना पड़ता है।ऐसी दीवानगी में वह निसंग होकर नाचता है , "तेरे इश्क नचाया कर के थैय्या थैय्या"। ऐसी खूबसूरत चीज़ें आपके जीवन में तभी आ सकती हैं जब आप अपने जीवन को एक ऐसे रंग से भरते चलते हैं जिसमें किसी के लिए कोई राग-द्वेष नहीं बचता, इस इश्क़ हकीकी में अपना सर्वस्व लुटाते हैं और फिर उस पाए हुए अद्भुत सुख का आनंद भी बढ़ता चला जाता है।-

"इश्क दी नवियों नवीं बहार ,

वेद कुरान पढ़ पढ़ थक्के ,

न रब तीर्थ न रब मक्के,

जिस पाया तिस नूर अवतार ,

इश्क दी नवियों नवीं बहार।"**3**

अपनी सारी उम्र में बड़े थपेड़े सहकर बुल्ले ने इस सत्य को पाया था। एक शख्स जिसे उसकी लीक से हटकर धारणाओं और भावनाओं के कारण गैर-इस्लामिक करार दिया गया और जिसे कज़ा के बाद भी अपने समुदाय का कब्रिस्तान नसीब न हुआ, जिसकी बातों में "काफ़िर" होने की बू आती थी, नियति का यह खेल देखिए कि आज उसे पूरी दुनिया में इबादत के शिखर पर स्थान दिया जाता है।उस बाबा "बुल्ले शाह" ने अपनी ज़िंदगी का एक बहुमूल्य समय "मुर्शिद" यानी कि "गुरू" की खोज में

बिताया और जब पाया तो वह गुरु किसी भी तरह से उनके उचित न था।अपनी जाति, हैसियत और भेष-भूषा में किसी भी तरह से उनके बराबर न था जो उनका किसी गुरू की तरह जान पड़ता। एक निम्नजाति व्यक्ति को अपना मुर्शिद मान बैठे बाबा सारे जीवन के रहस्य को पा गए। लोगों की इस बेरुखी और ऊँच नीच की बढ़ी हुई दीवारों को देखकर बुल्लेशाह का मन बहुत आहत होता है और वे कह उठते हैं ......

"चल बुल्लेया चल ओथे चलिए ,

जित्थे होवन सारे अन्ने,

न कोई साड्डी जात पछाणे,

न कोई सानूं मन्ने !!"4

बुल्ला अपने को कहते हैं कि चल किसी ऐसी जगह चलें जहाँ सारे अंधे हों ,कोई हमारी जाति को न माने और न ही हमें कोई पहचान सके। विडम्बना देखिए जाति और धर्म को लेकर आज यह परिस्थितियाँ कितनी भयावह हो चुकी हैं। जिस बुल्लेशाह की अपने गुरू के लिए इतनी भक्ति हो ,उसके दिल में खुदा के लिए कैसा अनुराग होगा, यह अनकहे ही स्पष्ट है। अपने गुरु के प्रति उनकी निष्ठा और समर्पण देखिए कि अगर किसी ने मुझे सैयद कहा तो वह जहन्नुम में जाएगा और 'अराई' कहा तो सीधे स्वर्ग में झूला झूलेगा।

बाबा बुल्लेशाह के जीवन में एक ऐसा वक्त भी आया जब मुर्शिद उनसे बहुत नाराज़ हो गए थे और उनके लाख मनाने पर भी नहीं मान रहे थे।उनकी यह जुदाई भले लम्बी नहीं थी पर इसने बुल्ले को कुंदन की तरह तपा दिया था। बुल्ला शक्ल-ओ-सूरत से बहुत ही सुंदर थे ,उनके गले में सोज़ और सुर में लय भी थी। लाहौर की नर्तकियों से उन्होंने कई साल नृत्य भी सीखा था। इसलिए बुल्ले ने जनाने कपड़े पहनकर, पैरों में घुँघरू बांधकर सबके सामने एक भरी सभा में अपने मुर्शिद को नाच नाचकर मना लिया। उसकी दिल चीरने वाली काफियां जब शाह इनायत के कानों में पड़ीं तो उन्होंने उसे अपने कदमों से उठाकर गले लगा लिया।अपने को भूला हुआ बताकर उन्होंने अपने मुर्शिद का फिर से ऐतबार पा लिया। बुल्ले ने गाया —--

"आओ नी सइयो रल देवो नी बधाई,मैं वर पाया राँझा माही।"5

बुल्लेशाह का लक्ष्य ईश्वरानुभूति है जिसके लिए उनका माध्यम इश्क या प्रेम है। उनकी काव्य रचना उस समय की हर प्रकार की धार्मिक कट्टरता और गिरते सामाजिक जीवन पर एक तीखा व्यंग है।उनकी रचनाएं लोगों में अपने लोक जीवन में से लिए अलंकारों और जादुई लय के कारण हरमन प्यारी है। बाबा बुल्लेशाह ने बड़ी बहादुरी के साथ अपने समय के हाकिमों के ज़ुल्मों और धार्मिक कट्टरता के विरोध में आवाज़ उठायी।बुल्ले शाह इंसान के अस्तित्व को लेकर बहुत जिज्ञासू और चिंतित रहे।उनका कलाम "बुल्ला की जाणा मैं कौन" आपको अंदर तक झकझोर देता है और अपनेआप से पूछने पर मजबूर कर देता है कि आखिर आपका अस्तित्व क्या है? इसमें अपने 'स्व' को समझने की तीव्र इच्छा ज़ाहिर हुई है जो बाहरी लेबल और निर्मित पहचान की परतों से मुक्त है।यह गीत एक आंतरिक यात्रा पर निकलने के लिए एक निमंत्रण सा लगता है - बाहरी दुनिया के विकर्षणों से दूर और अपनी आत्मा की गहराई में जाने की यात्रा भी है। बुल्ले शाह की कविताएँ गहन आत्मनिरीक्षण पर आधारित हैं और बार-बार आने वाला यह वाक्य, "बुल्ला की जाणा मैं कौन" एक निरंतर अनुस्मारक के रूप में कार्य करता है कि आत्म-साक्षात्कार का मार्ग एक गहन व्यक्तिगत मार्ग है।आज की तेज़ रफ़्तार और भागती दौड़ती ज़िंदगी में, जहाँ हमने अपनी भौतिक खोजों और बाहरी उपलब्धियों के साथ-साथ अपनी पहचान के नाम पर देश,

धर्म, शहर, भाषा, जाति ,पद , प्रतिष्ठा के दायरे बना रखे हैं, वहाँ यह जानते हुए भी कि इन बंद ख़ानों में अपनेआप को समेट कर जीना सही नहीं है ,इनसे निकलने की कभी कोशिश नहीं करते। समाज के बनाए इन खोखले दायरों और दीवारों से शायद हम लड़ना नहीं चाहते। आज के हालातों में यह गीत और भी प्रासंगिक हो जाता है। यह गीत हमें रुकने, चिंतन करने और भीतर की ओर मुड़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। जो उत्तर हम खोज रहे हैं, वे दुनिया में नहीं बल्कि हमारे भीतर ही मिलेंगे। आध्यात्मिक यात्रा अहंकार, सामाजिक अपेक्षाओं और बाहरी मान्यता की परतों को हटाकर आंतरिक सत्य और शांति की जगह पर पहुँचने की यात्रा है। यह एक गीत से कहीं ज़्यादा है, यह मानवीय स्थिति पर एक आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन है। बुल्ले शाह हमें अपनी पहचान की प्रकृति पर सवाल उठाने, समाज द्वारा लगाए गए लेबल से परे जाने और आत्म-साक्षात्कार की आंतरिक यात्रा पर निकलने के लिए आमंत्रित करते हैं। समर्पण, रहस्यवाद और सार्वभौमिकता के गीत के विषय समय और स्थान के पार गूंजते हैं, जिससे यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि जब इसे पहली बार लिखा गया था। वे कहते हैं……...
“बुल्ला की जाणा मैं कौण। ना मैं मोमन विच मसीतां, ना मैं विच कुफर दीआं रीतां, ना मैं पाका विच पलीताँ , ना मैं मूसा ना फरऔन। ना मैं अऱबी ना लाहौरी, ना मैं हिंदी शहर नगौरी,ना हिंदू ना तुरक पशौरी, ना मैं रहिंदा विच्च नदौण।”**6**

वे किसी भी तरह के बंटवारे में बंधने को तैयार नहीं होते। मैं कौन हूं, मुझे नहीं पता। ना तो मैं कट्टर मुसलमान हूं और ना ही नास्तिक। ना मैं पवित्र हूं और ना ही मलिन। ना तो मैं कोई पैगंबर हूं और ना ही कोई अहंकारी बादशाह, मुझे पता नहीं मैं कौन हूं। ऐसी वाणी बोलने वाले बुल्ले शाह ने हिंदू, मुसलमान और सिखों में समान रूप से लोकप्रियता हासिल की थी। बुल्लेशाह को मानने वाले उन्हें परमात्मा का सेवक, दोनों लोकों के रहस्य का ज्ञाता, अनुभव तथा ज्ञान का सम्राट कहा करते थे। पंजाब का यह सूफी फकीर अध्यात्म के शिखर पर पहुंचा और लाखों लोगों को अपने ज्ञान तथा अनुभव का साझीदार बना गया। उनकी रचनाएं आज भी भारतीय उपमहाद्वीप में लाखों लोगों की ज़ुबान पर हैं। उन्होंने समाज के हर कोने में ज्ञान, सद्भाव और भाईचारे के प्रेम की ज्योति जलाने का काम किया।इसलिए वे कहते हैं कि मुझे वो ज्ञान प्राप्त हुआ कि सब कुछ भूलकर बस उसके प्रेम में रम गया हूँ जहाँ दूसर कुछ नाहीं…..

“ ऐसा जगया ज्ञान पलीता

ना हम हिंदू ना तुर्क जरूरी, नाम इश्क दी है मनजूरी

आशिक ने हरि जीता, ऐसा जगया ज्ञान पलीता।

बुल्ला आशिक दी बात न्यारी, प्रेम वालयां बड़ी करारी

मूरख दी मत्त ऐवें मारी, वाक सुखन चुप्प कीता,

ऐसा जगया ज्ञान पलीता।”**7**

आज का दौर झूठ, फ़रेब, छल कपट और चाटुकारिता का दौर है । सच किसी को भी सुनना गवारा नहीं , हर कोई चाशनी में लपेटा हुआ झूठ सुनना चाहता है। सच बोलने से कितने नुकसान होते हैं , बाबा बुल्लेशाह उस पर भी कहते हैं और सच की वकालत करते हैं । एक काफी में शाह कहते हैं—“ मुंह आई बात ना रैहनदी ए।झूठ आखां ते कुझ बच्चदा ए, सच्च आखयां भांबड़ मचदा ए,जी दोहा गल्ला तों जचदा ए, जच जच के जिहबा कैहनदी ए।”**8**

आज लोगों में जिस तरह लोभ, लालच और स्वार्थ की प्रवृति बढ़ी है और सब कुछ संग्रहण करने की होड़ मची है ऐसे में लाखों जरूरतमंद लोग भूखे प्यासे मरते हैं। इन्हीं परिस्थितियों पर आसमान में उड़ते पंछियों को देखकर बाबा बुल्लेशाह ने कहा कि कैसी विडंबना है आसमान में उड़ने वाले पंछी कभी रोटी का संग्रहण नहीं करते फिर भी वे कभी भूखे नहीं मरते। दूसरी तरफ़ इंसान हैं जो खाने की वस्तुओं का इतना संग्रह करते हैं और फिर भी भूखे मरते हैं.....

"वेख आसमान ते उड़दे पंछी/ वेख तां की करदे ने
न ओ करदे रिज़्क़ ज़खीरा/न ही ओ भुक्खे मरदे ने

ते बंदे करदे रिज़्क़ ज़खीरा/ते बंदे ही भुक्खे मरदे ने !!"9

बुल्लेशाह ने आजीवन कविता की, उनकी कविता के भी जीवन की ही तरह कई चरण हैं। पहले चरण में बुल्ले शाह की वे कविताएं हैं जो इस्लाम के उनके अध्ययन और ज्ञान से प्रभावित हैं। जहां उन्होंने इस्लामी आचार-विचारों और मिथकों आदि का इस्तेमाल किया है। दूसरे चरण की कविता में बुल्ले शाह अपने मुर्शिद के संपर्क में आ चुके थे, जिससे प्रेम का महत्त्व, बाहरी ज्ञान और कर्मकांड की व्यर्थता उनकी समझ में आ गई थी। बुल्ले शाह ने एक जगह लिखा है कि-

"पतियां लिखां मैं शाम नू मोहे पिया नज़र न आवे

आंगन बना डरावना किस विध रैन विहावे

पांधे पंडित जगत के मैं पूछ रहीयां सारे

पोथी वेद का दोस है जो उल्टे भाग हमारे।"10

बुल्ले शाह ने धर्म के नाम पर कर्मकांड और अंधविश्वास का खुलकर विरोध किया। उन्होंने तमाम धर्मों पर इन बातों को लेकर कटाक्ष किए। वे कहते हैं कि मुल्ला और काज़ी धर्म का मार्ग बताने के बजाय मनुष्य को भ्रम में डालते हैं। ये ठग हैं और शिकारी की तरह चारों तरफ अपना जाल फैलाते हैं। बार-बार मंदिरों- मस्जिदों में जाते हैं,पर कभी अपने खुद के अंदर नहीं झाँकते और ख़ुद से कभी साक्षात् नहीं करते। बाबा बुल्लेशाह किताबी ज्ञान को ही सब कुछ मानने वालों पर कटाक्ष करते लिखते हैं....

"पढ़-पढ़ आलिम फ़ाज़िल होया / कदी अपणे आप नूं पढ़या ही नहीं

जा जा वड़दा मंदिर मसीते / कदी मन अपने विच तूं वड़ेआ ही नहीं

ऐवें रोज शैतान दे नाल लड़दा / कदी नफ्ज़ अपने नाल लड़ेआ ई नहीं

बुल्ले शाह आसमानीं उड्डया फड़दा / जेहड़ा घर बैठा ओहनू फड़या ही नहीं !!"11

आज के परिवेश में दिनों को मनाने का चलन बहुत बढ़ गया है, ऐसा ही एक दिवस मित्रता को समर्पित होता है। दोस्तियाँ करनी तो बहुत आसान होती हैं लेकिन निभानी उतनी ही मुश्किल। बाबा बुल्लेशाह अपने समय में सच्ची दोस्ती का दस्तूर बताते हैं और नीतियुक्त सलाह देते हैं ......

"उस संग यारी कदी न करिए, जिसको अपने पे गुरूर होवे,
माँ-बाप को बुरा कभी न कहिए, चाहे लाख उनका कुसूर होवे,
राह चलते को दिल कभी न दईये , चाहे लाख चेहरे पे नूर होवे,
ओ बुल्लया ! दोस्ती सिर्फ उससे करिए, जिसका दोस्ती निभाने का दस्तूर होवे !!"12

आजिज़ी अथवा विनम्रता (दीनता)का भाव बाबा बुल्लेशाह के इश्क़ का मूलाधार रहा है।वे अपनी वाणी में जितने बेबाक और निर्भीक हैं, उतने ही विनम्र भी। उनकी वाणी और व्यवहार में बेबाक़ी और विनम्रता का अद्भुत संगम रहा ,तभी तो वे अपना मुर्शिद एक निम्नजातीय व्यक्ति को बना पाए जिन्होंने उसे रब को पाने का इतना सहज मार्ग सुझाया । समर्पण में वे अपने को कुत्तों से भी हीन समझते हैं और कभी इतना छोटा और दीन-हीन बनकर अपने प्रिय का दरबार बुहारना चाहते हैं कि बस किसी भी तरह उनके संसर्ग में बने रहें। उनका सोचना है कि कभी चूल्हा बनकर तपना चाहिए ताकि फकीरों के लिए भोजन पकाया जा सके।कभी उनके मन में निकृष्ट पत्थर बन जाने की इच्छा जाग उठती है ताकि लोग उस पर अपने पाँव रगड़कर उन्हें साफ़ कर सकें। प्रामाणिक इश्क़ की पहचान,अहम् का विनाश है जो आज दुर्लभ है। वे संसार की वस्तु को मिट्टी समझते हैं और इस संसार के कलह-क्लेश को मिट्टी की मिट्टी से लड़ाई के रूप में देखते और समाधान करते हैं कि जो इस संसार में दिखाई दे रहा है, वह चार दिनों की मिट्टी की ही गुलज़ार है जिसमें लोग आते हैं और चंद रोज़ बिताकर चले जाते हैं लेकिन वो जीवन के इस सत्य को नहीं देख पाते कि आखिर तो ये जीवन नश्वर है फिर इतना अहंकार किसलिए ?जबकि सबका अंत एक ही है क्या राजा, क्या रंक सबको अंततः मिट्टी में ही मिल जाना है। ये सच्चे अर्थों में इश्क़ का ऊंचा मुकाम है जिसे पाना सबके लिए सम्भव नहीं। बुल्लेशाह ने इस भाव को किस ख़ूबसूरती से उकेरा है ......

“वाह! वाह! मिट्टी दी गुलज़ार । माटी घोड़ा,माटी जोड़ा ,माटी दा असवार।

माटी माटी को मारन दौड़े ,माट्टी के खड़कार।माटी माटी को मारन लागी,माटी के हथियार ।”13

आजकल के धूर्त और पाखंडी लोगों की हरकतों और बढ़ते कारोबार को देखकर बड़ा अफ़सोस होता है और लोगों का अन्धविश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। बुल्लेशाह ने एक सच्चे संत/ फ़कीर का परिचय देते हुए जो कहा था उनके प्रति मन अगाध श्रद्धा से भर जाता था लेकिन आज उसका रूप एकदम विकृत और वितृष्णा से भरा है। वे क्या ख़ूब लिखते हैं.........

“हद टप्पे सो ओलिया ,जूह टप्पे सो पीर,हद बेहद दोनों टप्पे, जां का नाम फ़कीर !!”14

आज की कुटिल साम्प्रदायिक परिस्थितियों व राजनीतिक दांवपेंच में जिस तरह से आम लोगों को मोहरा बनाकर पूरी मानवता को बर्बाद करने के षड्यंत्र रचे जा रहे हैं, यह सब बहुत खतरनाक हैं।धर्म और मज़हब के नाम तो कभी जाति या लिंग के नाम हर तरफ प्रतिकूल परिस्थितियों को पैदा कर आपस में लड़वाया जा रहा है।इन्सान को इन्सान का दुश्मन बनाकर जो खेल खेलना शुरू किया ऐसे में किसी के ऊपर भी विश्वास करना मुश्किल हो गया है। इस लिए बार बार उन शिक्षाओं और इल्म को पढ़ना होगा और उसके मर्म को समझना होगा, तब कहीं जाकर बात बनेगी ....

" पढ़ी नमाज़ ते नयाज़ न सिखया,तेरियां किस कम्म पढियाँ नमाजां ,

न घर धिठा न घरवाला धित्ठा,तेरियां किस कम्म आईयां नयाजां

इल्म कीता ते अमल न कीता,तेरियां किस कम्म कीतियाँ वाजां

बुल्लेशाह पता तद लग सी, जदों चिड़ी फंसी हथ बाजां !!” 15

ऋतुओं पर भी बुल्लेशाह ने बड़ा खूबसूरत लिखा है। सावन महीने में जवान लड़कियों के खेलने,गाने-बजाने को बड़ी सुन्दरता से वर्णित करते हैं। बाबा बुल्लेशाह की यह काफ़ी जो सावन के महीने में मन की तृष्णा के साथ ही धरती की इस तपन के बुझने की बात भी करती है ......

"सावन माह सुहावना जो धरती बूँद पई

अनहद बरसे मेघला जो मन की तृप्त गई

मल्हारा सोहन सारे सावन/ दूती दूत लगे उठ जावन

नी घर खेलन कुड़ियां गावन/ मैं घर रंग-रँगीले आवन।

मेरियां आसां रब्ब पुजाइयाँ/ताँ मैं उन संग अखियाँ लाइयाँ

सईयाँ देन मुबारक आईयाँ/ शाह इनायत अंग लगाईयाँ।"**16**

बुल्ले शाह की रचनाओं से प्रेम करने वाले लोग हर बार उनके एक नए संसार से परिचित होते हैं। सैकड़ों वर्ष बीतने के बाद भी बुल्लेशाह की रचनाएं अमर बनी हुई हैं।बुल्ले शाह की रचनाओं का सिनेमा, संगीत और टेलीविजन पर भी काफी इस्तेमाल हुआ है।आधुनिक समय के कई कलाकारों ने कई आधुनिक रूपों में भी उनकी रचनाओं को प्रस्तुत किया है। रब्बी शेरगील का एक रॉक गाना "बुल्ला की जाना" बहुत ही मशहूर हुआ । बॉलीवुड फिल्म 'रॉकस्टार' के गाने "कतया करूं" में बुल्ले शाह सुनाई देते हैं।फिल्म दिल से' के गाने "छइयाँ छइयाँ" के बोल बुल्ले शाह के काफ़ी "तेरे इश्क नचाया कर थैया थैया" पर आधारित हैं।अविभाजित पंजाब का कोई ऐसा गायक नहीं होगा जिसने बाबा बुल्लेशाह को न गाया हो। हिंदी और पंजाबी सिनेमा में बाबा बुल्लेशाह के कलामों का बखूबी उपयोग हो रहा है। पंजाबी अदब की मुख्तसर त्वारीख बाबा बुल्लेशाह की शिक्षाओं के मूल सिद्धांतों व शिक्षाओं की तुलना उनके समकालीन सूफियों की शिक्षाओं से भी कर सकते हैं जिससे उस समय की भावनाओं की एक सुसंगत तस्वीर पेश हो सकती है।

अंत में कह सकते हैं कि बाबा बुल्लेशाह का समूचा सूफ़ी साहित्य 'इश्क' और सामाजिक सरोकारों को समर्पित है।बाबा बुल्लेशाह का रचना संसार पंजाबी सूफ़ी साहित्य की एक सशक्त धरोहर है जो भारतीय ज्ञान परम्परा की एक अद्भुत कड़ी है। वे इश्क़ हकीकी में ऊंचा मुकाम रखने के साथ साथ , एक अलौकिक कवि, समाज सुधारक के रूप में भी सामने आते हैं। उनकी रचनाओं से आध्यात्मिक,सांस्कृतिक, सामाजिक , नैतिक, धर्म , दर्शन और जीवन के विविध पहलुओं पर ज्ञान लगातार निसृत होता है।उनकी यह परम्परा मानव जीवन के हर क्षेत्र में मार्गदर्शन करती है और उसे एक बेहतर जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है।बाबा बुल्लेशाह का यह योगदान अद्वितीय है जो पूरे विश्व में सदियों तक अपनी आभा फैलाता रहेगा।उन्हीं के शब्दों में ….. "बेशक मंदिर मस्जिद तोड़ो ,बुल्लेशाह यह कहता ,

पर प्यार भरा दिल कभी न तोड़ो,इस दिल में दिलवर रहता !

संदर्भ ग्रंथ सूची —--

1.डॉ. मोहन सिंह, बुल्लेशाह **-50** काफ़ी , लाहौर, **1939** , पृष्ठ**-3**

2.सुरिंदर सिंह कोहली , भारतीय साहित्य के निर्माता- बुल्लेशाह , दिल्ली: साहित्य अकादमी, **1992** , पृष्ठ **.12**

3. सुरिंदर सिंह कोहली , भारतीय साहित्य के निर्माता- बुल्लेशाह , दिल्ली: साहित्य अकादमी, 1992 , पृष्ठ.40
4. जनश्रुतियाँ
5. सतेन्द्र सिंह नूर, पंजाबी सूफ़ी कवि , दिल्ली : साहित्य अकादमी ,1997, पृष्ठ.209
6. सतेन्द्र सिंह नूर, पंजाबी सूफ़ी कवि , दिल्ली : साहित्य अकादमी ,1997, पृष्ठ.195
8. डॉ. मोहन सिंह, बुल्लेशाह -50 काफ़ी , लाहौर, 1939
9. सतेन्द्र सिंह नूर, पंजाबी सूफ़ी कवि , दिल्ली : साहित्य अकादमी ,1997, पृष्ठ.209
10.जनश्रुतियाँ
11. डॉ. मोहन सिंह, बुल्लेशाह -50 काफ़ी , लाहौर, 1939
12.जनश्रुतियाँ
13.सतेन्द्र सिंह नूर, पंजाबी सूफ़ी कवि , दिल्ली : साहित्य अकादमी ,1997, पृष्ठ.208
14.. डॉ. मोहन सिंह, बुल्लेशाह -50 काफ़ी , लाहौर, 1939 ,
15. जनश्रुतियाँ
16. प्रो.प्यारा सिंह पदम , पंजाबी बारामाहे, जालंधर : सवैन प्रिंटिंग प्रेस ,1995 पृष्ठ.98